गीता अमृत

मन को कैसे जीतें?

पूज्यपाद संत श्रीआसारामजी बापू

जितने बढ़े व्यक्ति को हराया जाता है, उतना ही जीत का महत्त्व बढ़ जाता है। मन एक शक्तिशाली शत्रु है। उसे जीतने के लिए बुद्धिपूर्वक यत्न करना पड़ता है। मन जितना शक्तिशाली है, उस पर विजय पाना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। मन को हराने की कला जिस मानव में आ जाती है, वह मानव महान् हो जाता है।

'श्रीमद् भगवद् गीता' में अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से पूछता हैः

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवद् दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

'हे श्रीकृष्ण ! यह मन बड़ा ही चंचल, प्रमथन स्वभाववाला, बड़ा दृढ़ और बड़ा बलवान् है। इसलिए उसको वश में करना मैं वायु को रोकने की भाँति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ।'

(गीताः6.34)

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

'हे महाबाहो ! निःसंदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है। परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह अभ्यास अर्थात् एकीभाव में नित्य स्थिति के लिए बारंबार यत्न करने से और वैराग्य से वश में होता है।'

(गीताः 6.35)

जो लोग केवल वैराग्य का ही सहारा लेते है, वे मानसिक उन्माद के शिकार हो जाते हैं। मान लो, संसार में किसी निकटवर्ती के माता-पिता या कुटुम्बी की मृत्यु हो गयी। गये श्मशान में तो आ गया वैराग्य... किसी घटना को देखकर हो गया वैराग्य... चले गये गंगा किनारे... वस्त्र, बिस्तर आदि कुछ भी पास न रखा... भिक्षा माँगकर खा ली फिर... फिर अभ्यास नहीं किया। ... तो ऐसे लोगों का वैराग्य एकदेशीय हो जाता है।

अभ्यास के बिना वैराग्य परिपक्व नहीं होता है। अभ्यासरहित जो वैराग्य है वह 'मैं त्यागी हूँ' ... ऐसा भाव उत्पन्न कर दूसरों को तुच्छ दिखाने वाला एवं अहंकार सजाने वाला हो सकता है। ऐसा वैराग्य अंदर का आनंद न देने के कारण बोझरूप हो सकता है। इसीलिए भगवान कहते हैं-

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

अभ्यास की बलिहारी है क्योंकि मनुष्य जिस विषय का अभ्यास करता है, उसमें वह पारंगत हो जाता है। जैसे – साईकिल, मोटर आदि चलाने का अभ्यास है, पैसे सैट करने का अभ्यास है वैसे ही आत्म-अनात्म का विचार करके, मन की चंचल दशा को नियंत्रित करने का अभ्यास हो जाए तो मनुष्य सर्वोपरि सिद्धिरूप आत्मज्ञान को पा लेता है।

साधक अलग-अलग मार्ग के होते हैं। कोई ज्ञानमार्गी होता है, कोई भक्तिमार्गी होता है, कोई कर्ममार्गी होता है तो कोई योगमार्गी होता है। सेवा में अगर निष्कामता हो अर्थात् वाहवाही की आकांक्षा न हो एवं सच्चे दिल से, परिश्रम से अपनी योग्यता ईश्वर के कार्य में लगा दे तो यह हो गया निष्काम कर्मयोग।

निष्काम कर्मयोग में कहीं सकामता न आ जाये – इसके लिए सावधान रहे और कार्य करते-करते भी बार-बार अभ्यास करे किः 'शरीर मेरा नहीं, पाँच भूतों का है। वस्तुएँ मेरी नहीं, ये मेरे से पहले भी थीं और मैं मरूँगा तब भी यहीं रहेंगी... जिसका सर्वस्व है उसको रिझाने के लिए मैं काम करता हूँ...' ऐसा करने से सेवा करते-करते भी साधक का मन निर्वासिक सुख का एहसास कर सकता है।

भक्तिमार्गी साधक भक्ति करते-करते ऐसा अभ्यास करे किः 'अनंत ब्रह्माण्डनायक भगवान मेरे अपने हैं। मैं भगवान का हूँ तो आवश्यकता मेरी कैसी? मेरी आवश्यकता भी भगवान की आवश्यकता है, मेरा शरीर भी भगवान का शरीर है, मेरा घर भगवान का घर

है, मेरा बेटा भगवान का बेटा है, मेरी बेटी भगवान की बेटी है, मेरी इज्जत भगवान की इज्जत है तो मुझे चिन्ता किस बात की?' ऐसा अभ्यास करके भक्त निश्चिंत हो सकता है ।